जैन धार्मिक साहित्यमें उपमान और उपमेय

डॉ० अमिताभकुमार, खिमलासा, सागर, म० प्र०

स्थूल जगत्के पदार्थोंके उदाहरणोंके माध्यमसे गम्भीर, गूढ़ या आध्यात्मिक जगत्के तथ्योंको बोधगम्य बनानेकी परम्परा अति प्राचीन है। साहित्य जगत्के लिए यह प्रक्रिया जहाँ साहित्यकारके गम्भीर अनुभव, परीक्षण और चिन्तनका भान कराती है, वहीं यह साहित्यमें रोचकता और लालित्य भी उत्पन्न करती हैं। इस प्रक्रियाको साहित्यका अलङ्करण माना जाता है। अलङ्कारपूर्ण साहित्यमें कालिदासका नाम अग्रणी माना जाता है, 'उपमा कालिदासस्य'। साहित्यके क्षेत्रमें इस आलङ्कारिकताकी पर्याप्त विवेचना और समीक्षा होती रही है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भाषा और भावोंका अलङ्करण साहित्यके क्षेत्रमें ही सीमित मान लिया गया हो। वस्तुतः यह तथ्य नहीं है। विभिन्न धर्मग्रन्थोंके अवलोकनसे यह पता चलता है कि उनमें भी अध्यात्मके सिद्धान्तों और तत्त्वोंकी रोचक व्याख्या इसी माध्यमसे की जाती है। सामान्यतः यहाँ गूढ़ सिद्धान्त या तथ्य उपमेय कहा जाता है और जिस उदाहरणसे उसका विवरण समझाया जाता है उसकी तुलना की जाती है, वह उपमान या उपमा कहा जाता है। धार्मिक तत्त्वोंके व्याख्यानमें प्रायः उपमाका ही उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक साहित्यिक अलङ्कार होते हैं पर उनका उपयोग धार्मिक साहित्यमें विरल ही होता है। इस लघु लेखमें मैंने जैनोंके एक प्राचीन धार्मिक ग्रन्थके उपमान-उपमेयोंका संक्षिप्त विवरण देनेका प्रयत्न किया है जिसमें यह भी बताया गया है कि विभिन्न उपमानोंके आधारपर उपमेयोंके किन गुणोंका अनुमान लगता है और ये उपमान आध्यात्मिक तत्त्वोंको समझानेके लिये कितने उपयुक्त हैं। धार्मिक साहित्यमें इनके विस्तार व विकासकी प्रक्रियाका अध्ययन और विवेचन एक रोचक अध्ययन क्षेत्र प्रमाणित हो सकता है।

धार्मिक ग्रन्थका चयन : अष्ट पाहुड़

जैन ग्रन्थोंमें आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रन्थ पर्याप्त प्राचीन माने जाते हैं। ये ईसाकी पहली सदीमें लिखे गये थे। यह कहा जाता है कि उत्तम पद चाहनेवालोंको इन ग्रन्थोंका सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन करना चाहिये। पूज्य वर्णी जी प्रायः **समयसार** पर ही प्रवचन करते थे। पिछले कुछ वर्षोंसे समयसारने भिन्न-भिन्न मतवादोंको जन्म दिया है और प्रत्यक्षतः समाजके विशृङ्खलित करना प्रारम्भ किया है। यह कितने दुर्भाग्यकी बात है कि जिस ग्रन्थमें आत्माको परमात्मा बनानेकी प्रक्रियाको तत्त्वस्पर्शी निरूपण किया गया हो, वही आत्मधारियोंके विशृङ्खलनका कारण बन रहा है। समाजके धर्मगुरुओंको समयसारकी इस व्यथाको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

'समयसार' की इस दयनीय स्थितिके कारण मैंने उसे अपने इस लेखका विषय बनाना उचित नहीं समझा। इसके बदले, उसीके समकक्ष आ० कुन्दकुन्दके एक अन्य ग्रन्थ **अष्टपाहुड़**को मैंने अपने अध्ययनके लिये चुना है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह अध्यात्मसे सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रोंको समाहित करता है। इसमें निरूपित उपमान-उपमेयोंका विवरण प्रायः सभी धार्मिक एवं आध्यात्मिक मन्तव्योंका समाहरण करता है। सोलहवीं सदीके टीकाकार श्रुतसागर सूरिके समयमें इसके छह प्राभृत ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध रहे होंगे। पर बादमें दो प्राभृत (लिंग और शील प्राभृत) और उपलब्ध हो गये, फलतः यह अष्टप्राभृत **अष्ट पाहुड़** हो गया। इसीलिये अन्तिम दो प्राभृतों पर श्रुतसागरने टीका नहीं लिखी।

इस टीकाके पर्याप्त उत्तरवर्ती होनेके कारण यह प्रायः समस्त उपमेयों ओर उपमानोंका समाहार करते हुए लिखी गई है। इसलिये यह हमारे अध्ययनकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी है। इन उपमानों और उपमेयोंका उपयोग अन्य अनेक ग्रन्थोंमें भी मिलता है। इस टीकायुक्त अष्ट पाहुड़का हिन्दीमें अनूदित एक संस्करण महावीरजी संस्थानसे प्रकाशित किया गया है। यही संस्करण इस लेखका आधार है।

विभिन्न प्रकारके उपमेय

धार्मिक तथ्योंके वर्णनमें प्रायः चार दर्जनसे अधिक उपमेयोंका उपयोग होता है। इनका विवरण **सारणी १** में दिया गया है। इन उपमेयोंके अन्तर्गत धर्म-कर्म, सम्यक्त्व, ज्ञान, आत्मा और जीव, संसार, मोक्ष, राग, तप, विषय और पाप आदि समाहित होते हैं। सारणीसे यह भी प्रकट है कि कर्म, सम्यक्त्व, ज्ञान, संसार, शरीर, विषय, राग, मुनि और तप जैसे महत्त्वपूर्ण उपमेयोंके लिये अनेक उपमानोंका उपयोग किया गया है। यही नहीं, अनेक उपमेयोंके लिये भी एक ही उपमानका उपयोग किया गया है। उदाहरणार्थ, आत्मा और कर्म-दोनोंका उपमान राजा है। इसी प्रकार धर्म, मोह, संसार, पुनर्जन्म, रत्नत्रयके लिये वृक्षको उपमान बनाया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि अनेक उपमेयोंके लिये एक उपमानका उपयोग विशेष विशेष गुणोंके महत्त्वको प्रदर्शित करता है। यही नहीं, इस तथ्य को सामान्य ही मानना चाहियेकि प्रत्येक उपमेयके लिये प्रयुक्त उपमानका विशिष्ट गुण ही समीचीन अर्थका द्योतन करता है। उपमानके सभी गुण उपमेय पर अनुप्रयुक्त नहीं होते। फिर भी, अनेक उपमानोंके कारण सामान्य भ्रान्ति, द्विविधा तथा विपर्यास होता है। क्योंकि वे तथ्योंके तत्त्वको उतनी सूक्ष्मता तक ग्रहण नहीं करा पाते जितना अभीष्ट है।

विविध प्रकारके उपमान

सारणी २ में प्रदर्शित अनेक उपमानोंकी सूचीको देखने पर प्रकट होता है कि प्रायः पाँचसे अधिक दर्जन उपमान धार्मिक तत्त्वोंको समझानेके लिए प्रयुक्त किये गये हैं। समग्रतः इन्हें पाँच कोटियोंमें वर्गीकृत किया जाता है। इनमें अनेक उपमान प्राकृतिक वस्तुयें और घटनायें हैं। अनेक उपमान सामान्य वस्तुओंके रूपमें हैं। ग्रह और धातुतत्त्वोंने भी कुछ उपमानोंका रूप लिया है। कुछ उपमान भावात्मक अनुभूतियाँ भी हैं। इन उपमानोंके आधार पर विभिन्न धार्मिक उपमेयोंका विवरण सजाना वास्तवमें एक मनोरंजक बौद्धिक व्यायाम होगा। इन उपमानोंकी विविधतासे एक तथ्य तो स्पष्ट होता ही है कि जैनाचार्य उत्कृष्ट कोटिके प्रकृति निरीक्षक थे। वे अनेक प्रकारकी प्राकृतिक घटनाओं एवं वस्तुओंके विशेष विशेष गुणोंका ज्ञान रखते थे। **सारणी** ३ में इन्हें संक्षेपित किया गया है। इनके माध्यमसे मनोवैज्ञानिक रूपसे आध्यात्मिक तत्त्वोंकी गूढ़ताको सहज बोधगम्य बनानेकी कलामें पारङ्गत थे। इस विवरणमें हम केवल तीन बहु-उपमानी उपमेयों पर विचार कर कुछ उपपत्तियाँ प्रस्तुत करेंगे।

संसारके उपमान

जैन दर्शनमें दो प्रकारके जीव बताये गये हैं—संसारी, दृश्य जगत्के निवासी और मुक्त-अदृश्य लोकके निवासी। संसारी जीवोंके जीवनका चरम लक्ष्य दृश्य लोकको छोड़कर अदृश्य लोकमें पहुँचना बताया गया है। इसीलिये अदृश्य लोकको लक्ष्मी, प्रिया या राजमहलके उपमानोंसे निरूपित किया गया है। निश्चित ही, ये तीनों उपमान सांसारिक जगत्के लिये आकर्षण हैं। ये अतिश्रम, अर्थोपार्जन एवं प्राकृतिक विशिष्टताओंके कारण प्राप्त होते हैं। संसारी जीवका सामान्य जीवन ही इनके चारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओर घूमता है। इनकी प्राप्ति जीवनमें एक विशेष प्रकार की सार्थकताका आभास करती है। इन्हें पुण्य और पूर्वजन्मका फल बताया जाता है। जब ये वस्तुयें संसारमें ही मिल सकती हैं, तब अदृश्य लोककी क्या आवश्यकता ? इसलिये अदृश्य लोकको संसारसे विलक्षण होना ही चाहिये। यह बताया गया है कि इस लोकमें चिर-स्थायित्व है, जबकि संसार अपने जन्म-मृत्युके कारण क्षणस्थायी है। यद्यपि ये उपमान भी चिरस्थायी नहीं, पर इनके स्थायी रूपसे मिलनेकी कल्पनामें एक विशेष सन्तोष व सुखकी अनुभूति सहज ही होती है। इसका कारण यह है कि इस जीवनमें इन वस्तुओंसे प्राप्त होनेवाले क्षणिक सुखोंसे हम परिचित हैं। ये हमें सदैव क्रियाशील एवं गतिशील बनाये रखते हैं। फलतः अदृश्य लोक या मुक्तिके इन उपमानोंसे हमें उनके भौतिक अस्थायित्वके गुणकी ओर नहीं, अपितु उनके सौन्दर्य, उनके प्रति अनुरक्ति और उनसे प्राप्त होने वाले सहज एवं महिमामण्डित सुखके गुणकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसलिये मुक्तिकी तुलनामें संसारके लिये ऐसे उपमान दिये गये हैं जिनमें सुखानुभूति नहीं होती। इन उपमानोंकी संख्या सात है। संसार संताप है। संताप शब्द सुनते ही दुःखका भान होता है। संसारको समुद्र भी बताया गया है। यह अगाध होता है, गहन होता है और असीम होता है। उसको पार करना कठिन होता है। केवलज्ञानी जन ही इस समुद्रको पार कर सकते हैं। यह उपमान संसारकी असीमता, गहनता और उससे पार होनेकी जटिलताका बोध कराता है। यहाँ समुद्रसे रत्नोंकी प्राप्तिको कोई महत्त्व नहीं दिया गया है क्योंकि यह सुखकर प्रतीतिका मूल है। फलतः समुद्रका नाम सुनते ही जो एक विशेष प्रकारकी अरुचिकर अनुभूति होती है, वह संसारका प्रतीक है। समुद्रमें भँवर, तूफान आदि भी उठते हैं। ये भी कष्टकर होते हैं। शान्त समुद्रसे तो एक बार बचा भी जा सकता है पर भँवर व तूफानोंसे निकलना और भी दुष्कर है। भँवर और तूफानोंकी विकरालता एवं जटिलताकी कल्पना ही की जा सकती है। भँवरके उपमानसे संसारकी विकरालता प्रकट होती है।

संसारके लिये वन, वृक्ष, लता और अङ्कुर उपमानोंका भी उपयोग किया गया है। वस्तुतः ये प्राकृतिक पदार्थ हैं। इनकी हरियाली एवं नवजीवन देखते ही बनते हैं। बहुतेरे महापुरुषोंने अनेक वनों और वृक्षोंको अपने विहारसे पवित्र किया है और उनके तले बोधि प्राप्त की है। वृक्ष और वन संन्यासके आयतन हैं। ये हमारे जीवनके रक्षक हैं। ये हमें बरसात लाते हैं। औषधियाँ, खाद्य और आवास देते हैं। इस प्रकार वन और वृक्ष हमारे लिये पर्याप्त सुखकर अनुभूतिके साधन हैं। सम्भवतः, संसार भी हमें अनेक प्रकारसे ऐसी अनुभूति करता है। लेकिन इस अनुभूति के साथ वनमें विकरालता भी होती है। उसमें जङ्गली जानवर, अत्यन्त कटीले वृक्ष और लताएँ होती हैं। इसमें शत्रुओं और डाकुओंकी भी सम्भावना है। एक बार वनमें प्रविष्ट होने पर उससे निकलना बड़ा कठिन होता है क्योंकि वहाँ प्रशस्त पथ नहीं होता। अनेक पगडण्डियाँ होती हैं और मनुष्य भूलभुलैयामें फँस जाता है। वनोंका यह कुरूप ही संसारके उपमानके रूपमें प्रकट किया गया है। बाह्य आकर्षण और किंचित् बाह्य सुखानुभूतिकी कामनासे उसके अन्दर प्रवेश करना एक ऐसे चक्रमें फँसना है जहाँ दिशाबोध न हो। वस्तुतः ये प्राकृतिक और सघन वन हैं जहाँ यह स्थिति स्वाभाविक हो सकती है। आजके मानव निर्मित वनोंमें ऐसी स्थिति नहीं होती। लेकिन संसार-रूपी वनमें तो कर्मरूपी शत्रु सदैव रहते हैं। इन्हें जीतनेके लिये ज्ञान, भावना, क्षमा, ध्यान एवं चरित्ररूपी शस्त्रोंका उपयोग करना पड़ता है।

संसारको वृक्षकी उपमा भी दी गई है। वृक्षकी जड़ें तो सूक्ष्म, अदृश्य और दूर-दूर तक फैली रहती हैं। वे उसकी भीतरी शक्तिकी प्रतीक हैं। वृक्षका तना भी मजबूतीका द्योतक है। वृक्षका ऊपरी रूप उसके विस्तार और शोभाका द्योतक है। इसी प्रकार संसारके आकर्षणकी शक्ति प्रचण्ड होती है और उसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकर्षण भी असीम होता है। इस संसाररूपी वृक्षको ध्यानरूपी कुठारसे ही छेदा जा सकता है। संसाररूपी वृक्षकी छाया सामान्य एवं थके हुये मनुष्यको जो शान्ति देती है, वह यहाँ अभिप्रेत नहीं है। वस्तुतः यह शान्ति ही इसका आकर्षण है। अदृश्य लोकमें इससे अधिक एवं चिरस्थायी शान्ति होती है। अतः उसे ही जीवनका लक्ष्य माना गया है।

संसारको अङ्कुर और लताकी उपमा भी दी गई है। वास्तवमें, ये दोनों ही जीवनकी मधुरताके प्रतीक हैं। लेकिन ऐसा माना जाता है कि संसारमें बने रहनेके दो कारण होते हैं—कर्म और मोह। कर्मबीजसे संसार अङ्कुर उत्पन्न होता है और मोहबीजसे संसार लता उत्पन्न होती है। ऐसा भी माना जाता है कि कर्मबीज और मोहबीजके नष्ट होने पर संसाररूपी अङ्कुर और लता उत्पन्न ही न हो सकेगी। पर यदि ये उत्पन्न हो ही गये, तो इन्हें भावनारूप कुदाली या ध्यानरूपी अग्निसे नष्ट करनेका यत्न करना चाहिये। यदि जैनधर्म भावप्रधान है, तो अङ्कुरों और लताओंको नष्ट करनेका उपदेश अहिंसक दृष्टिके विपरीत जाता है। सम्भवतः यही कारण है कि इन अङ्कुरों और लताओंको मूलतः नष्ट करनेका साहस एक लाखमेंसे लगभग पन्द्रह व्यक्ति ही जुटा पाते हैं। ये अपने उद्देश्यमें कितने सफल होते हैं, यह इसलिये नहीं कहा जा सकता कि पञ्चम और षष्ठ कालमें मुक्ति योग्य क्षमता आगम निषिद्ध है। फिर भी, यह मानना चाहिये कि संसारके इन उपमानोंसे इसकी ऐसी दुखमयता व्यक्त नहीं होती जैसी अनेक प्रवचनों और ग्रन्थोंकी व्याख्याओंमें पाई जाती है। लेकिन संसारको उत्तम सुखका स्थान भी कैसे कहा जा सकता हैं ?

शरीरके उपमान

आत्मिक उत्थानकी प्रक्रियाको विकसित करनेके लिये यह आवश्यक है कि वर्तमान जीवन और उसके आधारभूत शरीरके प्रति घृणा उत्पन्न की जावे। इस दृष्टिसे शास्त्रोंमें शरीरके विवरण में अत्यन्त अरुचिकर भाषाका उपयोग किया गया है। इसे अनेक मल पदार्थोंसे भरा तथा अशुचि बताया है। इसे घट, कुटी और झोपड़ीकी उपमा देते हुए बताया है कि इसमें रुचिकर वस्तुओंकी अपेक्षा घृणा योग्य वस्तुयें भरी हुई हैं। इसकी उत्पत्ति हिंसक माध्यमोंसे हुई है। इसके एक-एक अङ्गुलमें ९६ रोग होते हैं और मृत्युरूपी हाथी इस पर सदैव वार करता रहता है। शरीरके माध्यमसे मनुष्य महादुखमय विषय सुखमें फँसा रहता है। सामान्य शरीर जीवित अवस्थामें शवके समान गर्हणीय है। यह हमारे सारे कष्टोंका मूल है। अतः इसे परिग्रहके समान छोड़ देना चाहिये। एक ओर जहाँ शरीरको घृणास्पद बताया गया है, वहीं दूसरी ओर उसे धर्म साधनका अङ्ग भी बताया गया है। वस्तुतः, शरीरकी जितनी निन्दा की गई है, उतना वह है नहीं, इसलिये सदियोंसे मुखरित होने वाली महापुरुषोंकी पवित्र वाणियाँ सामान्य जनके कान छूती हुई चली आ रही हैं और हमारा जीवन तथा संसार सुखमय बननेके बदले दुखबहुल बनता-सा दीखता है। यदि शरीरके प्रति इतनी गर्हणीयताका उपदेश न दिया गया होता और उसे व्यक्ति और समाजकी प्रगति करनेकी क्षमताके माध्यमसे वर्णित किया गया होता, तो शायद हमारा समाज अधिक उन्नत नैतिक धरातल पर होता। शरीर सम्बन्धी उपमानोंसे तो यहां निष्कर्ष निकलता है कि जिस प्रकार घट, झोपड़ी, कुटी और परिग्रह हमारे जीवनमें अनेक प्रकारसे उपकारी होते हैं, उसी प्रकार हमारा शरीर भी हमारे लिये तथा मानव-जातिके लिये अनेक प्रकारके सुखमय विकासमें सहायक है। इसमें भरी अपवित्र वस्तुयें तो प्रकृति स्वयं निकालती रहती है और इसे शुद्ध जीवनदायी रुधिरसे भरती रहती है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ विचार और प्रवृत्तियाँ सम्भव हैं। इसलिये हमें इन उपमानोंके आधार पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरके विषयमें कुछ उदार दृष्टिसे विचार कर अपना जीवन उन्नत करना चाहिये ।

तपके उपमान

आध्यात्मिक जीवनके विकासके लिये सामान्य जीवनमें तपका बड़ा महत्त्व है । तप एक अग्नि है जो हमारे बाहरी और भीतरी तंत्रको सोनेके समान शुद्ध बनाती है । उपवास आदि बाह्यतप हमारे शरीर तन्त्रको स्वस्थ एवं स्वच्छ बनाये रखते हैं । आलोचना, प्रतिक्रमण आदि हमारे अंतरंगमें ऐसे गुणोंका विकास करते हैं जो स्वस्थ और विकासशील समाजकी सुखमयताको बढ़ाते हैं । इन दोनों ही प्रकारकी प्रक्रियाओंसे जीवनमें एक विशेष प्रकारकी स्फूर्ति, सजीवता एवं आनन्दकी अनुभूति होती है । ऐसे आनन्दकारक तत्त्वको रत्न कहा जाना उपयुक्त ही है । तपस्वी जीवन व्यक्ति-शोधक तो है ही, यह हमारे सामाजिक वातावरणको भी शुद्धि करता है । इसे सूपा और धौकन्नी भी बताया गया है । इसका अर्थ यही है कि जैसे ये उपकरण अशुद्ध वस्तुओंको शुद्ध करनेमें काम आती हैं (सूपासे धान्यसे तुष दूर किया जाता है, धौकनीसे अशुद्ध लोहेसे किट्टिम निकालकर शुद्ध लोहा प्राप्त किया जाता है), उसी प्रकार तप भी एक साधन है जो हमारी अशुद्ध प्रवृत्तियोंको नियंत्रित करता है और हमें शुभ प्रवृत्तियोंकी ओर प्रेरित करता है । यदि हम मानवकी विभिन्न प्रवृत्तियोंको कर्मसिद्धान्तके आधार पर कर्म कण माने, तो हमारी तपस्वी वृत्ति हमारे अरुचिकर कर्म कणोंको धोंकनीके समान जला सकती है अथवा सूपाके समान उड़ा सकती है । इस आधार पर तपके चारों ही उपमान उसके गुणोंकी व्याख्या करते हैं । इसके विपरीत, संसार और शरीरके उपमान हमें दोनोंसे ही घृणा करने की प्रेरणा देते हैं । वस्तुतः यदि संसार और शरीर न रहे, तो तपका अस्तित्त्व ही कहाँ होगा ?

इस प्रकार विभिन्न उपमेयोंके लिये प्रयुक्त उपमानोंको समीक्षित करने पर यह ज्ञात होता है कि सांसारिक क्षेत्रसे सम्बन्धित सभी उपमेयोंके उपमानोंमें एक विशिष्ट प्रकारकी वृत्तिका आभास होता है । इसलिये समाजने इनको स्वीकार नहीं कर पाया है । कबीरने इस स्थितिको देखकर ही कहा था कि मेरी बात कोई नहीं सुनता । वास्तवमें, बहुतेरे उपमान तो बीसवीं सदीके विवेकी समाजमें अत्यन्त ही उपेक्षणीय लगते हैं । स्त्रीको नागिन, राग और स्नेहको पिशाच, युवावस्थाको गहन ताल, गृहस्थको तपे हुए लोहेका गोला, अभव्यको उल्लू इत्यादि कहना सम्बन्धित उपमेयोंकी उपयोगिताके प्रति उपेक्षावृत्ति जगाना है । यह समाजके विकासके लिये हितकर वृत्ति नहीं है ।

इसके विपरीत, धर्म और मुक्तिको वल्लभा, सम्यक्त्वको रत्न, वैराग्य आदिको सम्पदा, रत्नत्रयको बोधिवृक्ष, वैयावृत्यको सरोवर, ज्ञानको सूर्य आदिके उपमान अनेक प्रकारसे उपयुक्त हैं पर चूँकि सामान्य जन तो दृश्य जगत्‌से ही प्रभावित रहता है, अतः उसने उपमेयोंके बदले उपमानोंकी ही आराधना प्रारम्भ कर दी है । वह जीवन मूल्योंको प्रस्फुटित करने वाले उपमेयोंको भूल ही गया । यह वर्तमान समाज के लिये कितनी विडम्बना स्थिति है कि जहाँ हमें रहना है, उसे उपेक्षणीय बना लें और जहां हमें रहनेकी कल्पनात्मक लालसा जगाई जा रही है, उसे सब कुछ मान लें । इस स्थितिसे ही मानव सदासे द्विविधामें रहा है । बीसवीं सदीके धर्मगुरुओं तथा तत्त्वज्ञानियोंसे यह आशा की जाती है कि वे इस द्विविधाजनक स्थितिमें समुचित मार्ग दर्शन करेंगे ।

सारणी १. धार्मिक उपमेय और उपमान

उपमेय	उपमान
१. धर्म	वृक्ष, महल, लक्ष्मी, चक्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. आत्मा	राजा, स्फटिकमणि, नमककी डली, ऊर्जा तिलमें तेल, दूधमें घी, काष्ठमें अग्नि
३. जीव	चाक, शिल्पिक, लोहा
४. कर्म	कीट, विष, चक्र, बीज, शत्रु मल, वज्र, ईंधन, रज, जंजीर, राजा
५. सम्यक्त्व	रत्न, जल, कोरा घड़ा, सूर्योदय, लक्ष्मी, चिन्तामणिमाणिक्यकिरण, मेरुपर्वत, हाथ, जड़, नींव
६. सम्यकग्ज्ञान	जल, धन, सूर्य, शस्त्र, रथ, कुदाली,
७. ज्ञानी	स्वर्ण, कीचड़में सोना, श्वेतशंख
८. संसार	वन, लता, अंकुर, सागर, संताप, भँवर, वृक्ष
९. शरीर	घट, परिग्रह, शव, झोपड़ी, कुटी
१०. पुण्य	पैर
११. मोक्ष	महल, प्रिया
१२. कषाय	योद्धा-शत्रु
१३. पाप	कलंक, धूलि, अन्धकार
१४. स्त्री	वृक्षोंका सघनवन, नागिन
१५. यौवन	गहन ताल
१६. विषय	सुख, विष, विषपुष्प, समुद्र, गन्नेका छिलका
१७. बुद्धि	नौका
१८. जरा, मरण	व्याधि, वेदना
१९. ध्यान	दीपक, कुठार
२०. माया	महालता
२१. मोह	महावृक्ष
२२. राग	वायु, झञ्झावात, पिशाच
२३. रोग	अग्नि
२४. पुनर्जन्म	वृक्ष
२५. भक्ति	तैल
२६. मृत्यु	हाथी, अग्नि
२७. वैराग्य	संपदा
२८. चरित्र	जल, खड्ग, अग्नि
२९. भावना	कुदाली
३०. संयम	संग्राम
३१. मुनि	चन्द्र, भ्रमर, कुलपर्वत, समुद्र, आकाश
३२. गृहस्थ	तपे हुए लोहे का गोला।
३३. अज्ञानी	कीचड़में पड़ा हुआ लोहा
३४. मिथ्यात्व	कन्दमूल, मल, अन्धकार, मलिन वस्त्र
३५. तप	अग्नि, सूपा, जीवन, समुद्रके रत्न, धौंकनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. क्षमा	तलवार
३७. वैयावृत्य	सरोवर
३८. रत्नत्रय	बोधिवृक्ष
३९. आस्रव	तैल
४०. जिनवचन	औषध
४१. कर्मबन्ध	तरुणी स्त्री-पुरुषसंयोग
४२. कर्मके विविध रूप	आहारके विविध पाक
४३. कर्म बन्ध पाक	पके फलका गिरना
४४. इन्द्रिय	द्वार
४५. अभव्य जीव	उल्लू
४६. समता सुख	मछलियाँ
४७. कोमलता	मालती पुष्प
४८. ओष्ठ	बिंबफल
४९. नेत्र	कमल
५०. चरण	कमल
५१. मुख	चन्द्र
५२. शास्त्र, जिनवचन	औषधि, अमृत, महासागर

सारणी २. विभिन्न उपमानोंका वर्गीकरण

१. प्राकृतिक वस्तुएँ और घटनाएँ		२. सामान्य वस्तुएँ	
जल	सरोवर, गहन ताल	मल	शिल्पिक
वृक्ष, बोधिवृक्ष, महावृक्ष	झंझावात	कीच, कीट	चाक
लता, महालता	भंवर	इंधन	सूपा
अङ्कुर	समुद्र	तैल	धौंकनी
कमल	रत्न	महल	दीपक
वन, सघनवन	स्फटिकमणि	लक्ष्मी, प्रिया	चक
विषपुष्प	वज्र	कुटी, झोपड़ी	धन, सम्पत्ति
कन्दमूल	मेरुपर्वत	विषकुम्भ	नागिन
विष	श्वेतशंख	राजा	कुठार
	अन्धकार	योद्धा, शत्रु	शास्त्र, कुदाली
		नौका	
३. धातुएँ	**४. भावात्मक उपमान**	**५. ग्रह**	छिलका
नाग	व्याधि	सूर्य	घट
वङ्ग	वेदना	चन्द्र	विविधमणि
सुवर्ण	सुख	पिशाच	नमक, क्रिस्टल
लोह			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारणी ३. धार्मिक तत्त्वोंके लिये उपमान

उपमान	गुण	उपमेय
१. जल	प्रवाह व प्रक्षालन गुण	सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र
२. वृक्ष	प्राकृतिक आकर्षण, विशालता	धर्म, मोह, पुनर्जन्म, संसार
वन, सघन वन	प्राकृतिक आकर्षण, भुलभुलैया	संसार, स्त्री
लता, महालता	परजीविता	संसार, माया
३. समुद्र	अनन्त विस्तार, गहराई, रत्न	संसार, मुनि, विषय
४. रत्न	शोभा, बहुमूल्यता, कठोरता	तप, सम्यक्त्व
५. स्फटिकमणि, माणिक्य, नमक	चिन्तामणि, शुद्धता, क्रिस्टल	बहुमूल्यता
६. शत्रु	युद्ध करना, जीतना	कर्म, कषाय
७. महल	निवास स्थान, विस्तार, सौन्दर्य	धर्म, मोक्ष
८. लक्ष्मी, प्रिया	चाहनेकी इच्छा, सौन्दर्य, अनुरक्ति	धर्म, मोक्ष
९. राजा	सामर्थ्य	कर्म आत्मा
१०. शस्त्र, कुदाली तलवार, खड्ग	छेदन, भेदन, शत्रु-दलन	ज्ञान, भावना, क्षमा, ध्यान चरित्र
११. विष, विषपुष्प	विषाक्तता, बाधक	कर्म, विषय
१२. धूलि, मल, रज, कीट कलङ्क	सूक्ष्मता, चिपकनेकी क्षमता निराकरणीयता	कर्म, मिथ्यात्व, पाप
१३. अन्धकार	अदृश्यता	मिथ्यात्व, पाप
१४. अग्नि	जलाना, जलना, ऊर्जा सर्वभक्षण	रोग, मृत्यु, चरित्र, तप
१५. ईंधन	जलानेका गुण	कर्म
१६. तेल	स्निग्धता	भक्ति, आस्रव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org